पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में

नागेश्वर शर्मा

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

2017 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 8328

में

2019 की लेटर्स पेटेंट अपील सं.298

06 दिसंबर, 2023

(माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. बी. भजंत्री और माननीय न्यायमूर्ति श्री रमेश चंद मालवीय)

विचार के लिए मुद्दा

मुद्दा यह उठा कि क्या किसी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर दिए बिना विभागीय जांच में दंडित किया जा सकता है?

हेडनोट्स

वर्तमान एल.पी.ए. में अपीलकर्ता ने सी.डब्ल्यू.जे.सी. में पारित दिनांक 15.01.2019 के आदेश का विरोध किया। संख्या 8328/2017। समस्तीपुर डिवीजन में कार्यकारी अभियंता के रूप में काम करते समय अपीलकर्ता पर भ्रष्टाचार निवारण और अधिनियम, 1988 के तहत अपराधों के लिए एक एफआईआर दर्ज की गई थी, विशेष रूप से, धारा 13 की उप-धारा 2 के साथ धारा 13 की उप-धारा 1 (ई) के तहत - समानांतर रूप से, आय के ज्ञात स्रोत से अधिक अनुपातहीन कथित आरोप पर विभागीय जांच शुरू की गई थी - उन्हें 06.12.2013 को निलंबित कर दिया गया था - चार्ज मेमो जारी किया गया चार्ज मेमो में, दस्तावेजों की सूची नंबर 1, 2 और 3 के रूप में उद्धृत की गई है - उन दस्तावेजों के लेखक की ओर से सबूत पेश करने के लिए गवाहों की कोई सूची नहीं है - गवाह को प्रतिपरीक्षण का उचित अवसर दिए बिना जांच रिपोर्ट - यह पर्याप्त सुनवाई नहीं दिए जाने की श्रेणी में आएगा - ऐसे मामले में, आदेश की वैधता को पूर्वाग्रह की कसौटी पर तय किया जाना चाहिए, - ऑडी अल्टरम पार्टम का नियम [प्राकृतिक न्याय का प्राथमिक सिद्धांत] न्यायालय/ट्रिब्यूनल/प्राधिकरण को हमेशा उक्त नियम में अंतर्निहित अंतिम और सर्वोपरि उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना कि न्याय में कोई विफलता न हो - यह वह उद्देश्य है जो उनके सामने उत्पन्न होने वाली विभिन्न स्थितियों में नियम को लागू करने में उनका मार्गदर्शन करना चाहिए। अपीलकर्ता बिहार राज्य का सरकारी

कर्मचारी है - वह बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली, 2005 (जिसे इसके बाद "नियमावली, 2005" कहा जाएगा) द्वारा शासित है। नियम 17 वर्तमान मामले के प्रयोजन के लिए प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया से संबंधित है, नियम 17 का उप-नियम 3 प्रासंगिक है।

उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा। उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि: (क) जाँच किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई है;(ख) जाँच उस हेतु निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की गई है;(ग) कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है; (घ) प्राधिकारियों ने मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से इतर कुछ विचारों के कारण स्वयं को निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुँचने से रोक लिया है; (ङ) प्राधिकारियों ने स्वयं को अप्रासंगिक या बाहरी विचारों से प्रभावित होने दिया है; (च) निष्कर्ष, पहली नज़र में, इतना मनमाना और विद्वेषपूर्ण है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता; (vii) दंड की आनुपातिकता पर तब तक विचार नहीं करेगा जब तक कि वह उसके विवेक को झकझोर न दे।" (छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने त्रुटिवश स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया है; (ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने त्रुटिवश अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार कर लिया है, जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया है; (झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत, उच्च न्यायालय निम्नलिखित कार्य नहीं करेगा: (i) साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना; (ii) जांच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, यदि वह कानून के अनुसार की गई हो; (iii) साक्ष्य की पर्याप्तता की जांच करना; (iv) साक्ष्य की विश्वसनीयता की जांच करना; (v) हस्तक्षेप करना, यदि कोई कानूनी साक्ष्य हो जिस पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं; (vi) तथ्य की त्रुटि को सुधारना, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न प्रतीत हो; (vii) दंड की आनुपातिकता पर विचार करना, जब तक कि वह उसकी अंतरात्मा को झकझोर न दे।"

वर्तमान मामले में गवाहों या दस्तावेजों के लेखकों का हवाला न देना और उन लेखकों की जांच और गैर-परीक्षा अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए कथित आरोपों को साबित करने के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार अपीलकर्ता को प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत प्रदान करने से इनकार कर दिया गया है - जिसमें यह माना जाता है कि विभागीय जांच में यदि किसी दस्तावेज पर भरोसा करने की आवश्यकता होती है, तो उस दस्तावेज के लेखक की जांच और जिरह करना आवश्यक है - विभागीय जांच में कुछ आवश्यकताओं के अनुपालन की

आवश्यकता है - एक जांच में तथ्यों को साबित किया जाना चाहिए और जिस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही की जाती है उसे गवाहों से जिरह करने और अपने आरोप के बारे में अपना संस्करण या स्पष्टीकरण देने और अपने बचाव का नेतृत्व करने का अवसर मिलना चाहिए - कानून की इस स्थिति पर, प्रासंगिक तथ्यों में एक सरल सवाल उठता है। क्या इसका अनुपालन किया गया है? हालांकि तथ्यात्मक हिसाब पर उत्तर एक जोरदार "नहीं" है।

विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के साथ नवीनतम कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता ने एक मामला बनाया है, ताकि सी.डब्ल्यू.जे.सी. संख्या 8328/2017 में पारित विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 15.01.2019 में हस्तक्षेप किया जा सके - तदनुसार, बर्खास्तगी आदेश दिनांकित 08.08.2023 और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 15.01.2019 को 8328/2017 में पारित किया गए आदेश को अपास्त किया जाता है।

हम बर्खास्तगी आदेश के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश में भी हस्तक्षेप कर रहे हैं - इसलिए, उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे जांच को उस स्तर से नए सिरे से संचालित करें जहां यह कथित भेद्यता सामने आने से पहले थी - हालांकि, नए सिरे से जांच करने के उद्देश्य से, दोषी को बहाल किया जाना है और उसे निलंबित किया जा सकता है - बकाया वेतन आदि का प्रश्न नए सिरे से जांच समाप्त होने के बाद कानून के अनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाता है।

उपरोक्त के मद्देनजर, दोषी द्वारा मांगी गई राहत कि अपीलकर्ताओं को पहले समापन आदेश की तारीख से आज तक के बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए, पर विचार नहीं किया जा सकता है और इसे अस्वीकार किया जाता है - यदि अपीलकर्ता नए सिरे से जांच करने का विकल्प चुनते हैं, तो वे दोषी को बहाल करने के लिए बाध्य हैं और यदि उसे निलंबित कर दिया जाता है, तो वह जांच के समापन तक निर्वाह भत्ते का हकदार होगा - अन्य सभी हकदारियां जांच के समापन के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित की जाएंगी जैसा कि ऊपर बताया गया है इन टिप्पणियों के साथ, अपील का निपटारा किया जाता है। कोई लागत नहीं।"

वर्तमान मामले में, कथित आरोप यह है कि अपीलकर्ता ने अपनी आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति अर्जित की है, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के प्रावधानों को आकर्षित करती है। इसलिए, यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी का दोषपूर्ण चरण से जांच शुरू करने का मामला है, अर्थात दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची नए सिरे से तैयार करना और इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर जांच पूरी

करने के लिए आगे बढ़ना है। अनुशासनिक प्राधिकारी को बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के आलोक में बर्खास्तगी की तिथि से लेकर नए सिरे से विभागीय जाँच की समाप्ति तक की अवधि को विनियमित करने के संबंध में एक युक्तिसंगत आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, सेवा या मध्यवर्ती सेवा अवधि को किस प्रकार विनियमित किया जाए, इस संबंध में ऐसा आदेश विभागीय जाँच के नए सिरे से समापन की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर पारित किया जाएगा।

दिनांक 08.08.2016 के बर्खास्तगी आदेश को अपास्त करने के आलोक में, इस तथ्य के साथ कि अपीलकर्ता ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली है और वर्ष 2018 में सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, वह अनंतिम पेंशन का हकदार है - अनंतिम पेंशन उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि से मानी जाएगी और बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(बी) के साथ पठित नियम, 2005 के तहत विभागीय जांच के समापन तक उसे वितरित करने की कार्यवाही की जाएगी। सक्षम प्राधिकारी को बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(ख) के आलोक में सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध जांच जारी रखने के संबंध में जांच करने का निर्देश दिया जाता है।

तदनुसार, वर्तमान एल.पी.ए. संख्या 298/2019 आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है।

न्याय दृष्टान्त

रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक व अन्य ***(2009) 2 एससीसी 570*** में प्रतिवेदित; उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा ***(2010) (2) एससीसी 772*** में प्रतिवेदित; बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ व अन्य ***एआईआर 1996 एससी 484*** में प्रतिवेदित [पैराग्राफ संख्या 12 और 13 प्रासंगिक हैं]; भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल ***[(1964) 4 एससीआर 718]***; स्टेट बैंक ऑफ पटियाला व अन्य बनाम एस.के. शर्मा ***एआईआर 1996 एससी 1669*** में प्रतिवेदित, वहाँ न्यायालय ने; रसेल सी. ड्यूक ऑफ नॉरफ़ॉक ***[1949 (1) ऑल.ई.आर.109]*** 1949 में; महेंद्र सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, (***1978) 2 एस.सी.आर.272***: (***एआईआर 1978 एससी 851)***; ए.के.रॉय बनाम भारत संघ ***1982 (1) एस.सी.सी.271)***; स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम संघ ***(1981 (1) एस.सी.सी.664)]***; ए.के.क्राइपक एल अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य ***(1969 (2) एस.सी.सी.262)***; लिबर्टी ऑयल मिल्स बनाम भारत संघ ***(1984 (3) एस.सी.सी.465)***; भारत संघ एवं अन्य बनाम दलबीर सिंह ***(2021) 11 एससीसी 321*** (पैराग्राफ संख्या 21) में प्रतिवेदित; भारत संघ बनाम पी. गुणशेखरन [भारत संघ बनाम पी. गुणशेखरन, (***2015) 2***

एससीसी 610 : (2015) 1 एससीसी (एल एंड एस) 554]; एस.सी. गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक (यूको बैंक), ***1995 अनुपूरक (3) एससीसी 212*** में प्रतिवेदित; कुमाऊं मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम गिरजा शंकर पंत एवं अन्य, ***2001(1) एससीसी 182*** में प्रतिवेदित , (पैराग्राफ संख्या 21 और 22); प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य, ***(1993) 4 एससीसी 727*** के साथ पठित; अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम अनंत साहा एवं अन्य, ***(2011) 5 एससीसी 142*** (पैराग्राफ संख्या 48 से 50) में प्रतिवेदित; उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रभात कुमार, ***2022 लाइव लॉ (एससी) 736*** में रिपोर्ट किए गए।

अधिनियमों की सूची

भारत का संविधान; प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत; भ्रष्टाचार निवारण एवं अपील अधिनियम, 1988; बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 के नियम 17 का उप-नियम 3 प्रासंगिक है। बिहार पेंशन नियम, धारा 43 बी।

मुख्य शब्दों की सूची

विभागीय जाँच, आय का अनुपातहीन ज्ञात स्रोत, कदाचार या दुर्व्यवहार,

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, पूर्वाग्रह का सिद्धांत, प्रमुख दंड, जाँच जारी रखना

प्रकरण से उत्पन्न

सी.डब्लू.जे.सी. संख्या 8328/2017 में दिनांक 15.01.2019 को आदेश पारित किया गया।

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

याचिकाकर्ता/ओं के लिए	:	श्री बिष्णुकांत दुबे, अधिवक्ता
उत्तरदाता/ओं के लिए	:	श्री एस. रज़ा अहमद, एएजी-5

रिपोर्टर द्वारा मुख्य नोट्स बनाया गया : शारंग धर उपाध्याय अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कटिहार (सेवानिवृत्त) सह रिपोर्टर पटना उच्च न्यायालय।

माननीय पटना उच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
2017 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं.8328
में
2019 की लेटर्स पेटेंट अपील सं.298

==========

नागेश्वर शर्मा पिता-स्वर्गीय बद्री शर्मा, निवासी- ग्राम रतनपुर, थाना दाउदनगर, जिला-औरंगाबाद, वर्तमान में बर्खास्त कार्यकारी अभियंता, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, बिहार सरकार, पटना।

... ...अपीलकर्ता/ओं

बनाम

1. बिहार राज्य
2. प्रधान सचिव, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, बिहार सरकार, पटना
3. अतिरिक्त सचिव, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, बिहार सरकार, पटना
4. संयुक्त सचिव, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, बिहार सरकार, पटना
5. विशेष अधिकारी, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, बिहार सरकार, पटना।

... ... उत्तरदाता/ओं

==========

उपस्थितः

अपीलार्थी/ओं के लिए	:	श्री बिष्णुकांत दुबे, अधिवक्ता
उत्तरदाता/ओं के लिए	:	श्री एस. रजा अहमद, एएजी-5

==========

गणपूर्तिः माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. बी. भजंत्री
और
माननीय न्यायमूर्ति श्री रमेश चंद मालवीय

मौखिक निर्णय

(प्रतिः माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. बी. भजंत्री)

दिनांकः 06-12-2023

वर्तमान लेटर्स पेटेंट अपील में, अपीलार्थी ने 2017 की दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं. 8328 में दिनांक 15.01.2019 को पारित आदेश का विरोध किया।

2. समस्तीपुर डिवीजन में कार्यकारी अभियंता के रूप में कार्यरत अपीलकर्ता के विरुद्ध, भ्रष्टाचार निवारण एवं अधिनियम,1988 के अंतर्गत अपराधों के लिए, विशेष रूप से धारा 13 की उप-धारा 2 और धारा 13 की उप-धारा 1 (ई) के तहत, 2013 की प्राथमिकी संख्या 7 दर्ज की गई थी। समानान्तर रूप से, आय के ज्ञात स्रोत से अधिक के कथित आरोप पर विभागीय जांच शुरू की गई थी। इन आरोपों पर उन्हें 06.12.2013 पर निलंबित कर दिया गया था, आरोप पत्र जारी किया गया था।आरोप पत्र में दस्तावेजों की सूची संख्या 1,2 और 3 के रूप में उद्धृत की गई है। उन दस्तावेजों के लेखक की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए गवाहों की कोई सूची नहीं है।दूसरे शब्दों में, यह उन कारणों के लिए कोई सबूत या विकृत सबूत का मामला नहीं है कि कुछ दस्तावेजों पर ध्यान दिया गया है और जांच को समाप्त करने के लिए आगे बढ़ाया गया है और 08.08.2016 पर सेवा से बर्खास्तगी का जुर्माना लगाया गया है।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 15.01.2019 को दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला संख्या 8328/2017 में पारित के आदेश के पृष्ठ संख्या 19 से 30 पर निम्नलिखित अभिनिर्धारत किया:

> *".....याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तीसरी याचिका यह दी गई है कि जाँच के दौरान, दस्तावेज़ी साक्ष्य के आधार पर आरोप साबित करने के लिए किसी भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई, लेकिन जाँच अधिकारी ने अपनी जाँच प्रतिवेदन प्रस्तुत की और पाया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप साबित हो गए हैं, जो दो निर्णयों में व्यक्त किए गए मत के विपरीत है और उन्होंने सबसे पहले (2009) 2 एससीसी 570 में सूचित रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य और (2010) (2) एससीसी 772) में सूचित उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा के मामले पर भरोसा किया है।*

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समय-समय पर न्यायिक समीक्षा के दायरे पर विचार-विमर्श किया गया है, इसकी रूपरेखा और दायरे को इस हद तक सीमित किया गया है कि रिट अदालत अपील की अदालत के रूप में कार्य नहीं करेगी, लेकिन केवल यह देखेगी कि विभागीय कार्यवाही के मामले से निपटने वाले अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के निर्णय का परीक्षण करते समय निम्नलिखित तत्व देखेंगे कि क्या दोषी को प्राकृतिक न्याय के संदर्भ में विभागीय कार्यवाही के दौरान उचित व्यवहार दिया गया है और साथ ही यह देखने के लिए कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा अपराध के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ सामग्री उपलब्ध है और अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत नहीं होने चाहिए, चूंकि कोई भी उचित व्यक्ति इस तरह के निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता था और निष्कर्ष ,साक्ष्य के भार के खिलाफ हैं, इसलिए जो तथ्य विचार के लिए प्रासंगिक थे, उन्हें छोड़ दिया गया है और जिन तथ्यों को लेने की आवश्यकता नहीं थी, उन पर विचार किया गया है कि न्यायालय यह सुनिश्चित नहीं करेगा कि जो निष्कर्ष प्राधिकरण ने निकाला है वह कानून की नजर में आवश्यक रूप से सही है और यह भी सुनिश्चित करने के लिए कि सक्षम प्राधिकारी ने प्राकृतिक न्याय के नियम का पालन किया है और पूछताछ अधिकारी के निष्कर्ष कुछ साक्ष्यों पर आधारित होने चाहिए। बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया जा सकता है, जो एआईआर 1996 एससी 484 में प्रतिवेदन किया गया था, जिसके पैराग्राफ संख्या 12 और 13 प्रासंगिक हैं और नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

> "12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय की अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार प्राप्त हो और यह सुनिश्चित करने के लिए नहीं कि प्राधिकरण जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह अदालत की नजर

में आवश्यक रूप से सही है।जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोप में जांच की जाती है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण यह निर्धारित करने के लिए संबंधित होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया जाता है।चाहे परिणाम या निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित हों, जांच करने की शक्ति सौंपे गए प्राधिकरण के पास तथ्य या तथ्य के निष्कर्ष तक पहुंचने का क्षेत्राधिकार, शक्ति और अधिकार होता है। लेकिन यह निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित होना चाहिए। न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण, जैसा कि उसमें परिभाषित किया गया है, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं।जब प्राधिकरण स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष से समर्थन प्राप्त होता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण को यह मानने का अधिकार है कि दोषी अधिकारी, आरोप का दोषी है। न्यायालय/न्यायाधिकरण अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और साक्ष्य पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष निकालने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/न्यायाधिकरण हस्तक्षेप कर सकता है यदि प्राधिकरण ने दोषी अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत तरीके से की हो या जाँच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन किया हो या जहाँ अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष या परिणाम किसी साक्ष्य पर आधारित न हो। यदि निष्कर्ष या परिणाम ऐसा है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी नहीं पहुंचा है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण निष्कर्ष या परिणाम में हस्तक्षेप कर सकता है, और राहत को ढाला जा सकता है ताकि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए उपयुक्त बनाया जा सके।

13. अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश होता है।जहाँ अपील प्रस्तुत की जाती है।अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य या सजा की प्रकृति का पुनर्मूल्यांकन करने की व्यापक शक्ति है।एक अनुशासनात्मक जांच में कानूनी साक्ष्य का सख्त प्रमाण और उस साक्ष्य पर निष्कर्ष प्रासंगिक नहीं हैं।साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता को न्यायालय/न्यायाधिकरण के समक्ष विचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।भारत संघ बनाम एच. सी. गोयल [(1964) 4 एस. सी. आर. 718] में, इस न्यायालय ने पृष्ठ 728 पर अभिनिर्धारित किया है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों पर पहुँचा गया निष्कर्ष, विकृत है या अभिलेख् के आधार पर स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है या बिना किसी साक्ष्य के आधारित है, तो उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है।"

एक अन्य फैसले स्टेट बैंक ऑफ पटियाला एवं अन्य बनाम एस.के. *शर्मा के मामले में , वहाँ न्यायालय ने विभागीय जाँच के संदर्भ में प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के इस अर्थ में पूर्वाग्रह के सिद्धांत को प्रस्तुत किया है कि यदि प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांतों जैसे दूसरे पक्ष की बात सुनने के अधिकार, जो कि प्राकृतिक न्याय का मूल है, का उल्लंघन नहीं किया गया है ,इस अर्थ में कि यदि जाँच बिना सूचना दिए या बिना कोई सुनवाई किए की गई है, तो प्राकृतिक न्याय के अन्य पहलुओं की जाँच किए बिना कार्यवाही दूषित हो जाती है, लेकिन यदि चुनौती विभागीय है कि कार्यवाही करते समय कुछ प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है और कोई विचलन है, तो ऐसी परिस्थितियों में सरकारी कर्मचारी का यह दायित्व होगा कि वह यह दर्शाए कि क्या उल्लंघन के कारण जाँच अधिकारी के समक्ष अपने मामले का बचाव करने में सरकारी कर्मचारी को कोई पूर्वाग्रह हुआ है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां व्यक्ति को पूरी तरह से सुने बिना सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है, वह कोई नोटिस नहीं, कोई सुनवाई नहीं की श्रेणी में आएगा और ऐसी*

परिस्थितियों में, बर्खास्तगी का आदेश अमान्य या शून्य होगा, लेकिन जहाँ व्यक्ति को जाँच प्रतिवेद की प्रति दिए बिना या गवाह को प्रति-परीक्षण का उचित अवसर दिए बिना सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है, तो यह पर्याप्त सुनवाई न दिए जाने की श्रेणी में आएगा। ऐसे मामले में, आदेश की वैधता पूर्वाग्रह की कसौटी पर तय की जानी चाहिए, यानी संबंधित व्यक्ति की निष्पक्ष सुनवाई हुई है या नहीं। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को सीधे-सादे सूत्र में नहीं रखा जा सकता, बल्कि यह प्रत्येक मामले के संदर्भों, तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है,किसी भी उल्लंघन के लिए, कार्यवाही विकृत नहीं होगी, बल्कि प्राकृतिक न्याय के विभिन्न पहलुओं से जाँच की जानी चाहिए, यदि आदेश बिना किसी सूचना या बिना किसी जाँच के पारित किया गया है, तो यह शून्य है और इसे बिना किसी और जाँच के रद्द कर दिया जाना चाहिए लेकिन, पूर्वाग्रह का सिद्धांत ऐसे मामलों में लागू होगा जहाँ शिकायतकर्ता का यह दावा नहीं है कि कोई सुनवाई नहीं हुई, कोई नोटिस नहीं दिया गया और कोई अवसर नहीं दिया गया, बल्कि यह दावा है कि उचित सुनवाई और पर्याप्त सुनवाई नहीं की गई या जाँच करने में प्रक्रियात्मक नियम का उल्लंघन किया गया, तो शिकायत की पूर्वाग्रह की कसौटी पर जाँच की जानी चाहिए जैसा कि ऊपर यहाँ समझाया गया है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं और रूपरेखाओं को उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 27 और 32 में संक्षेपित किया गया है, जो इस प्रकार है:

> "27. ऊपर दिए गए निर्णय एक बात स्पष्ट करते हैं, अर्थात प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को किसी भी कठोर और तेज़ सूत्र तक सीमित नहीं किया जा सकता है जैसा कि रसेल सी. ड्यूक ऑफ नॉरफ़ॉक [1949 (1) ऑल.ई.आर.109] में 1949 में कहा गया था, इन सिद्धांतों को सीधे तौर पर नहीं रखा जा सकता। उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले के संदर्भ और तथ्यों और

परिस्थितियों पर निर्भर करती है।[देखें महेंद्र सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, (1978)एस.सी.आर.272:(ए. आई. आर 1978 एस. सी. 851)।इसका उद्देश्य उस व्यक्ति के लिए एक निष्पक्ष सुनवाई, एक निष्पक्ष सौदा सुनिश्चित करना है, जिसके अधिकार प्रभावित होने वाले हैं।[देखें ए.के.रॉय बनाम भारत संघ 1982 (1) एस.सी.सी. 271) और स्वदेशी कॉटन मिल्स बनाम संघ (1981 (1) एस.सी.सी.664)]।जैसा कि इस न्यायालय ने ए.के. क्राइपक एल अन्य बनाम यूनियन डी इंडिया एवं अन्य (1969 (2) एस.सी.सी.262) में बताया है, अर्ध-न्यायिक कार्य और प्रशासनिक कार्य के बीच की विभाजक रेखा [किसी पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करने वाली] काफी पतली और लगभग अप्रभेद्य हो गई है एक तथ्य जिस पर हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने भी सी.सी.सी.यू. बनाम सिविल सेवा संघ [उपयुक्त] में जोर दिया था जहाँ प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों को समानार्थी माना गया था।निष्पक्ष सुनवाई के दृष्टिकोण से जो भी मामले हों-पूर्वाग्रह की कसौटी को लागू करना, जैसा कि इसे कहा जा सकता है-कि दूसरे को सुनने का अधिकार के नियम के उल्लंघन की किसी भी और प्रत्येक शिकायत की जांच की जानी चाहिए। वास्तव में, ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जहाँ पूर्व सूचना/सुनवाई न करने की आवश्यकता का पालन करने से कार्यवाही ही विफल हो सकती है - जिसके परिणामस्वरूप जनहित में गंभीर पूर्वाग्रह हो सकता है ।इसी कारण से, कुछ मामलों में, जैसे लिबर्टी ऑयल मिल्स बनाम भारत संघ (1984 (3) एस.सी.सी.465) में, प्राकृतिक न्याय के पर्याप्त अनुपालन के रूप में निर्णयोत्तर सुनवाई का नियम विकसित किया गया था। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां लोक हित या राज्य की सुरक्षा के हित या इसी तरह के अन्य विचार [अनुच्छेद 311 (2) के प्रावधान के खंड (बी) और (सी) द्वारा विचार की गई स्थितियों के मामले में] या उस सामग्री का खुलासा करना जिसके आधार पर कोई विशेष

कार्रवाई की जा रही है, दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार के नियम का पूरी तरह से पालन करना अनुचित बना सकते हैं। वास्तव में ऐसी कई अलग-अलग परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनका अनुमान लगाना किसी के लिए भी संभव नहीं है।हमारे सम्मानजनक राय में, निर्णीत मामलों से उभरने वाले सिद्धांतों को निम्नलिखित अनुशासनात्मक शर्तों में बताया जा सकता है: आदेशों और पूछताछ के संबंध में: प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत ,दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार जैसे के उल्लंघन और उक्त सिद्धांत के किसी पहलू के उल्लंघन के बीच एक अंतर किया जाना चाहिए।दूसरे शब्दों में, अंतर "कोई सूचना नहीं"/"कोई सुनवाई नहीं" और "पर्याप्त सुनवाई नहीं" के बीच है, या इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, "कोई अवसर नहीं" और "पर्याप्त अवसर नहीं"।उदाहरण के लिए- एक ऐसा मामला लीजिए जहाँ व्यक्ति को बिना उसकी पूरी सुनवाई किए ही सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है [जैसा कि रिज बनाम बाल्डविन में हुआ]। यह पहली श्रेणी के तहत आने वाला मामला होगा और बर्खास्तगी का आदेश अमान्य या शून्य होगा, अगर कोई उस अभिव्यक्ति [केल्विन बनाम कैर] का इस्तमाल करता है।लेकिन जहां व्यक्ति को सेवा से बर्खास्त किया जाता है, मान लीजिए, उसे जांच अधिकारी की प्रतिवेदन की एक प्रति प्रदान किए बिना [प्रबंध निदेशक,ई.सी.आई.एल. बनाम बी.करुणकर] या उसे किसी गवाह [के.एल.त्रिपाठी] से प्रति-परीक्षण करने का उचित अवसर दिए बिना ,यह बाद की श्रेणी में आने वाला मामला होगा- प्राकृतिक न्याय के उक्त नियम के एक पहलू का उल्लंघन-इस मामले में, आदेश की वैधता को पूर्वाग्रह की कसौटी पर जांचना होगा, यानी, क्या, कुल मिलाकर, संबंधित व्यक्ति की निष्पक्ष सुनवाई हुई या नहीं ।उपरोक्त निर्णयों के आलोक में यह कहना सही नहीं होगा कि प्राकृतिक न्याय के किसी भी पहलू या ऐसे पहलू को शामिल करने वाले नियम के किसी भी और हर उल्लंघन के लिए, पारित आदेश पूरी तरह से अमान्य है और

आगे की जांच के बिना इसे दरकिनार कर दिया जाना चाहिए। हमारी राय में, बी.करुणकर में अपनाए गए दृष्टिकोण और परीक्षण को उन सभी मामलों को नियंत्रित करना चाहिए जहां शिकायत यह नहीं है कि कोई सुनवाई नहीं हुई थी [कोई नोटिस नहीं, कोई अवसर नहीं और कोई सुनवाई नहीं] बल्कि उचित सुनवाई का समर्थन नहीं करने वाली है [यानी, पर्याप्त या एक पूर्ण सुनवाई] या एक प्रक्रियात्मक नियम या जांच को नियंत्रित करने वाली आवश्यकता का उल्लंघन; शिकायत की जांच उपरोक्त पूर्वाग्रह की कसौटी पर की जानी चाहिए।

32. हम उपरोक्त चर्चा से उभरने वाले सिद्धांतों का सारांश दे सकते हैं।[ये किसी भी तरह से संपूर्ण होने के लिए नहीं हैं और अनुशासनात्मक पूछताछ और कर्मचारी पर नियोक्ता द्वारा लगाए गए दंड के आदेशों के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए विकसित किए गए हैं]:

> *(1) इस तरह की पूछताछ को नियंत्रित करने वाले नियमों/विनियमों/वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में अनुशासनात्मक/विभागीय जांच के परिणामस्वरूप एक कर्मचारी पर दंड लगाने के लिए पारित आदेश को स्वचालित रूप से रद्द नहीं किया जाना चाहिए।न्यायालय या न्यायाधिकरण को यह जांच करनी चाहिए कि क्या (क) उल्लंघन किया गया प्रावधान मूल प्रकृति का है या (ख) क्या यह प्रक्रियात्मक प्रकृति का है।*
>
> *(2) जैसा कि यहाँ पहले बताया गया है, आम तौर पर एक मूल प्रावधान का पालन किया जाना चाहिए और ऐसे मामले में पर्याप्त अनुपालन का सिद्धांत या पूर्वाग्रह का परीक्षण लागू नहीं होगा।*
>
> *(3) प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन के मामले में, स्थिति यह है:प्रक्रियात्मक प्रावधान आम तौर पर दोषी*

अधिकारी/कर्मचारी को उचित और पर्याप्त अवसर प्रदान करने के लिए होते हैं। वे,आम तौर पर, उसके हित में कल्पित हैं। किसी भी और प्रत्येक प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन को स्वतः आयोजित जांच या पारित आदेश को दूषित करने के लिए नहीं कहा जा सकता है।'कोई नोटिस नहीं', 'कोई अवसर नहीं' और 'कोई सुनवाई नहीं' श्रेणियों के तहत आने वाले मामलों को छोड़कर, प्रक्रियात्मक प्रावधान के उल्लंघन की शिकायत की जांच पूर्वाग्रह के दृष्टिकोण से की जानी चाहिए।, क्या इस तरह के उल्लंघन ने दोषी अधिकारी/कर्मचारी को उचित और प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने में बाधा पहुँचाई है। यदि यह पाया जाता है कि वह इतना पूर्वाग्रहपूर्ण रहा है, तो पूर्वाग्रह को ठीक करने और सुधारने के लिए उचित आदेश दिए जाने चाहिए, जिसमें जांच और/या सजा के आदेश को दरकिनार करना शामिल है।यदि इसके परिणामस्वरूप कोई पूर्वाग्रह स्थापित नहीं होता है, तो यह स्पष्ट है कि किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।इस संबंध में, यह याद रखना चाहिए कि कुछ प्रक्रियात्मक प्रावधान ऐसे हो सकते हैं जो मौलिक प्रकृति के हों, जिनका उल्लंघन अपने आप में पूर्वाग्रह का प्रमाण है। न्यायालय ऐसे मामलों में पूर्वाग्रह के प्रमाण पर जोर नहीं दे सकता। जैसा कि निर्णय में स्पष्ट किया गया है,एक ऐसा मामला लें जहाँ एक प्रावधान है जो स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि नियोक्ता/सरकार की गवाही समाप्त होने के बाद, कर्मचारी को अपनी गवाही में बचाव का अवसर दिया जाएगा, और किसी मामले में, जाँच अधिकारी दोषी अधिकारी/कर्मचारी के अनुरोध के बावजूद उसे वह अवसर नहीं देता है। पूर्वाग्रह स्वयं स्पष्ट है। ऐसे मामले में पूर्वाग्रह का कोई सबूत नहीं मांगा जाना चाहिए।

दोहराने के लिए, परीक्षण पूर्वाग्रह का है, यानी, क्या व्यक्ति को सभी चीजों पर विचार करते हुए निष्पक्ष सुनवाई मिली है। अब, इस पहलू को निर्देशिका और अनिवार्य प्रावधानों के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है, यदि कोई इतना इच्छुक है।नीचे दिए गए (4) के तहत बताया गया सिद्धांत उसी पहलू को देखने का एक और तरीका मात्र है, जिस पर यहां चर्चा की गई है, न कि एक अलग या विशिष्ट सिद्धांत।

(4)(क) किसी प्रक्रियात्मक प्रावधान के मामले में, जो अनिवार्य प्रकृति का नहीं है, उल्लंघन की शिकायत की पर्याप्त अनुपालन के दृष्टिकोण से जांच की जानी चाहिए। ऐसा हो कि इस तरह के प्रावधान का उल्लंघन करते हुए पारित आदेश को केवल तभी दरकिनार किया जा सकता है जब इस तरह के उल्लंघन ने दोषी कर्मचारी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा किया हो।

(ख) यदि यह पाया जाता है कि यह पूर्वोक्त है, तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या दोषी अधिकारी ने उक्त आवश्यकताओं का स्पष्ट रूप से या अपने आचरण से परित्याग किया है। यदि यह पाया जाता है कि उसने इसका परित्याग किया है, तो दंड का आदेश उक्त उल्लंघन के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर, यदि यह पाया जाता है कि दोषी अधिकारी/कर्मचारी के पास यह अधिकार नहीं है या वह इस प्रावधान का परित्याग नहीं कर सकता, तो न्यायालय या न्यायाधिकरण को बी. करुणकर मामले में संविधान पीठ द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए उचित निर्देश देने चाहिए [जिसमें दंड के आदेश को रद्द करना भी शामिल है]। अंतिम परीक्षा हमेशा एक ही *होती है अर्थात पूर्वाग्रह का परीक्षण या*

निष्पक्ष सुनवाई का परीक्षण, जैसा कि इसे कहा जा सकता है।

(5) जहां जांच किसी भी नियम/विनियम/वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित नहीं होती है और एकमात्र दायित्व प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना है-या, उस मामले के लिए, जहां भी ऐसे सिद्धांतों को आदेश/कार्रवाई की प्रकृति और प्रभाव से निहित माना जाता है, न्यायालय या न्यायाधिकरण को प्राकृतिक न्याय [दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार का नियम] के पूर्ण उल्लंघन और उक्त नियम के एक पहलू के उल्लंघन के बीच अंतर करना चाहिए, जैसा कि निर्णय के मुख्य भाग में समझाया गया है।दूसरे शब्दों में, 'कोई अवसर नहीं' और 'कोई पर्याप्त अवसर नहीं' के बीच अंतर किया जाना चाहिए, यानी 'कोई सूचना नहीं'/'कोई सुनवाई नहीं' 'कोई निष्पक्ष सुनवाई नहीं' के बीच।(क) पूर्व के मामले में, पारित आदेश निस्संदेह अमान्य होगा [यदि कोई चाहे तो इसे "शून्य" या अशक्त कह सकता है]। ऐसे मामलों में, आम तौर पर, प्राधिकरण के लिए कानून के अनुसार नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता आरक्षित होगी, यानी उक्त नियम [दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार] के अनुसार (ख) लेकिन बाद के मामले में, उल्लंघन के प्रभाव [दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार के नियम के एक पहलू के] की पूर्वाग्रह के दृष्टिकोण से जांच की जानी चाहिए; दूसरे शब्दों में, न्यायालय या न्यायाधिकरण को यह देखना होगा कि क्या समग्र परिस्थितियों में, दोषी अधिकारी/कर्मचारी को निष्पक्ष सुनवाई मिली या नहीं और दिए जाने वाले आदेश उक्त प्रश्न के उत्तर पर निर्भर होंगे। [यह स्पष्ट किया जाता है कि यह सिद्धांत [संख्या 5] पूर्वाग्रह के

खिलाफ नियम के मामले में लागू नहीं होता है, वह परीक्षण जिसमें पक्ष कहीं और निर्धारित किया गया है।]

(6) दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार (प्राकृतिक न्याय का प्राथमिक सिद्धांत) के नियम को लागू करते समय न्यायालय/न्यायाधिकरण/प्राधिकरण को हमेशा उक्त नियम के अंतर्निहित अंतिम और अति-प्रमुख उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए, अर्थात, निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना कि न्याय की विफलता न हो। यही उद्देश्य है जो उनके सामने आने वाली अलग-अलग स्थितियों में नियम को लागू करने में उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

(7) ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं जहाँ राज्य के हितों या सार्वजनिक लोक हित के लिए दूसरे पक्ष को सुनने के अधिकार के नियम में कटौती की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी स्थितियों में, न्यायालय को प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता के साथ सार्वजनिक/राज्य के हित को संतुलित करना पड़ सकता है और एक उचित निर्णय पर पहुंचना पड़ सकता है।

उपरोक्त निर्णय से यह सिद्धांत उभरता है कि यदि जाँच बिना किसी सूचना और सुनवाई के की गई है, तो बर्खास्तगी का आदेश शून्य है, लेकिन जब यह मुद्दा उठाया जाता है कि उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया, तो ऐसी परिस्थितियों में यह देखना होगा कि क्या कथित उल्लंघन मामले की जड़ तक जाता है या किसी भी तरह से सरकारी कर्मचारी/अपराधी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा कर रहा है। पूर्वाग्रह न दिखाने पर न्यायालय यांत्रिक तरीके से प्राकृतिक न्याय लागू नहीं करेगा और जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने से परहेज करेगा।

यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मामले में, गवाहों से पूछताछ की जाए जो अपने स्वयं के तथ्य पर निर्भर है और यदि सरकारी कर्मचारी/दोषी आरोप के तथ्यात्मक ढाँचा से इनकार नहीं करता है, तो ऐसी परिस्थितियों में, गवाह को लाने में विफलता किसी भी तरह से अवैधता का कारण नहीं बनेगी।

4. अपीलार्थी बिहार राज्य का सरकारी कर्मचारी है। वह बिहार सरकार सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियमावली,2005 (इसके बाद "नियमावली,2005" के रूप में संदर्भित) द्वारा शासित होंगे । नियम 17 वर्तमान मामले के उद्देश्य के लिए बड़े दंड लगाने की प्रक्रिया से संबंधित है, नियम 17 का उप-नियम 3 प्रासंगिक है। नियम 2005 के पूरे नियम 17 को फिर से प्रस्तुत करना आवश्यक हैः

"17. गंभीर दंड लागू करने की प्रक्रिया-

(1) नियम 14 के खंड [(vi) से [(xi)] में निर्दिष्ट किसी भी दंड को अधिरोपित करने वाला कोई भी आदेश इन नियमों में प्रदान किए गए तरीके से, जहां तक हो सके, जांच किए बिना नहीं किया जाएगा।

(2) जहाँ कहीं भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी की राय है कि किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ कदाचार या दुर्व्यवहार के किसी भी आरोप की सच्चाई के बारे में पूछताछ करने के लिए आधार हैं, वह स्वयं इसकी जांच कर सकता है, या इन नियमों के तहत इसकी सच्चाई के बारे में पूछताछ करने के लिए एक प्राधिकरण नियुक्त कर सकता है।

[बशर्ते कि जहाँ विभागीय जाँच आयुक्त को जाँच प्राधिकारी नियुक्त किया गया हो ऐसे मामलों में विभागीय जाँच आयुक्त या तो स्वयं जाँच करेगा या जाँच का मामला अतिरिक्त विभागीय जाँच आयुक्त को हस्तांतरित कर सकता है। ऐसे हस्तांतरित जाँच मामलों में अतिरिक्त विभागीय जाँच आयुक्त जाँच के अभिलेखों को जाँच प्रतिवेदन सहित सीधे अनुशासनिक प्राधिकारी को भेज सकता है]

स्पष्टीकरण।- जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं जांच करता है, वहां इस नियम के उप-नियम (7) से उप-नियम (20) और उप-नियम (22) में किसी भी संदर्भ को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के संदर्भ के रूप में माना जाएगा।

(3) जहां इस नियम के तहत किसी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच करने का प्रस्ताव है, वहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी तैयार करेगा या तैयार कराएगा -

(i) कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का सार एक निश्चित और विशिष्ट आरोप के रूप में;

(ii) प्रत्येक आरोप के समर्थन में कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का एक बयान, जिसमें शामिल होगा-

(क) सरकारी कर्मचारी द्वारा किए गए किसी भी स्वीकार या स्वीकारोक्ति सहित सभी प्रासंगिक तथ्यों का एक बयान;

(ख) ऐसे दस्तावेज़ की एक सूची जिसके द्वारा, और <u>ऐसे गवाहों की एक सूची जिनके द्वारा आरोप पत्रों को बनाए रखने का प्रस्ताव किया गया है।</u>

(रेखांकित आपूर्ति की गई)

(4) अनुशासनिक प्राधिकारी सरकारी सेवक को आरोपों की एकप्रति, कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का विवरण और उन दस्तावेजों और गवाहों की एक सूची प्रदान करेगा या प्रदान करवाएगा जिनके द्वारा प्रत्येक आरोप को कायम रखा जाना प्रस्तावित है और सरकारी सेवक से निर्दिष्ट समय के भीतर अपने बचाव में एक लिखित बयान प्रस्तुत करने और यह बताने की अपेक्षा करेगा कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुनवाई की इच्छा रखता है।

(5) (क) बचाव पक्ष का लिखित बयान प्राप्त होने पर, अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं ऐसे आरोप-पत्रों की जांच कर सकता है जो स्वीकार नहीं किए गए हैं, या यदि वह इस नियम के उप-नियम (2) के तहत

नियुक्त करना आवश्यक समझता है, तो वह इस उद्देश्य के लिए एक जांच प्राधिकरण नियुक्त कर सकता है और जहां सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने बचाव के लिखित बयान में सभी आरोप-पत्र स्वीकार किए गए हैं, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रत्येक आरोप पर अपने निष्कर्षों को ऐसे साक्ष्य लेने के बाद दर्ज करेगा जो वह उचित समझे और नियम 18 में निर्धारित तरीके से कार्रवाई करेगा।

(ख) यदि सरकारी कर्मचारी द्वारा बचाव का कोई लिखित बयान प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकरण स्वयं आरोप पत्रों की जांच कर सकता है या यदि वह इस नियम के उप-नियम (2) के तहत इस उद्देश्य के लिए एक जांच प्राधिकरण नियुक्त करना आवश्यक समझता है, तो वह ऐसा कर सकता है।

(ग) जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं किसी आरोप की जांच करता है या ऐसे आरोप के बारे में जांच करने के लिए एक पूछताछ प्राधिकरण नियुक्त करता है, वह एक आदेश द्वारा, एक सरकारी कर्मचारी या एक कानूनी व्यवसायी को नियुक्त कर सकता है जिसे "प्रस्तुत करने वाले अधिकारी" के रूप में जाना जाता है ताकि वह आरोप पत्रों के समर्थन में अपनी ओर से मामला पेश कर सके।

(रेखांकित आपूर्ति की गई)

(6) अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जहां वह जांच प्राधिकारी नहीं है, निम्नलिखित अभिलेख जांच प्राधिकारी को अग्रेषित करेगा-

(i) आरोप पत्रों की एक प्रति और दुराचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का बयान;

(ii) सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए बचाव के लिखित बयान, यदि कोई हो, की एक प्रतिः

(iii) इस नियम के उप-नियम (3) में निर्दिष्ट गवाहों के बयान की एक प्रति, यदि कोई हो।

(iv) उप-नियम (3) में निर्दिष्ट दस्तावेजों को सरकारी कर्मचारी को देने का प्रमाण; और

(v) "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी" की नियुक्ति के आदेश की एक प्रति।

(7) सरकारी कर्मचारी आरोप पत्रों और कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का विवरण प्राप्त होने की तिथि से दस कार्य दिवसों के भीतर जांच प्राधिकारी के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होगा, जैसा कि जांच प्राधिकारी लिखित सूचना द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट करे या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर, जो दस दिनों से अधिक न हो, जैसा कि जांच प्राधिकारी द्वारा निर्दिष्ट किया जाए।

(8) (क) सरकारी कर्मचारी अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए अपने मुख्यालय या उस स्थान पर किसी भी कार्यालय में तैनात अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता ले सकता है जहाँ जाँच होनी है:

बशर्ते कि वह इस उद्देश्य के लिए किसी वि स्वयं विधि व्यवसायी न हो, या अनुशासनात्मक प्राधिकारी, मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अनुमति न दे ।

बशर्ते कि सरकारी कर्मचारी किसी अन्य स्थान पर तैनात किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता ले सकता है, यदि जाँच प्राधिकारी मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसा करने की अनुमति देता है:

बशर्ते कि सरकारी कर्मचारी ऐसे किसी अन्य सरकारी कर्मचारी की सहायता नहीं लेगा जिसके पास तीन लंबित अनुशासनात्मक मामले हैं जिनमें उसे सहायता देनी है।

(ख) सरकारी कर्मचारी अपनी ओर से मामला पेश करने के लिए किसी सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी की सहायता ले सकता है, बशर्ते कि सरकार द्वारा समय-समय पर इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट शर्तें लागू हों।

(9) यदि सरकारी कर्मचारी, जिसने अपने लिखित बचाव कथन में किसी भी आरोप पत्रों को स्वीकार नहीं किया है या बचाव का कोई लिखित कथन प्रस्तुत नहीं किया है, जाँच प्राधिकारी के समक्ष

उपस्थित होता है, तो ऐसा प्राधिकारी उससे पूछेगा कि क्या वह दोषी है या उसे अपने बचाव के लिए कुछ कहना है और यदि वह आरोपों की किसी भी धारा के लिए दोषी होने की दलील देता है, तो जाँच प्राधिकारी दलील दर्ज करेगा,अभिलेख पर हस्ताक्षर करेगा और उस पर सरकारी कर्मचारी के हस्ताक्षर प्राप्त करेगा।

(10) जाँच प्राधिकारी उन आरोपों के संबंध में दोष का निष्कर्ष देगा जिनके लिए सरकारी कर्मचारी दोषी होने की दलील देता है।

(11) यदि सरकारी कर्मचारी निर्दिष्ट समय के भीतर उपस्थित होने में विफल रहता है या अभिवचन करने से इनकार करता है या चूक करता है, तो पूछताछ करने वाला प्राधिकारी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी से वह साक्ष्य प्रस्तुत करने की अपेक्षा करेगा जिसके द्वारा वह आरोप पत्रों को साबित करने का प्रस्ताव करता है, और एक आदेश दर्ज करने के बाद मामले को तीस दिनों से अधिक की तारीख तक के लिए स्थगित कर देगा कि सरकारी कर्मचारी अपना बचाव तैयार करने के उद्देश्य से -

(i) आदेश के पांच दिनों के भीतर या जांच प्राधिकारी द्वारा अनुमत अधिकतम पांच दिनों के भीतर, उप-नियम (3) में सूचीबद्ध दस्तावेजों का निरीक्षण करें;(ii) उसकी ओर से जाँच किए जाने वाले गवाहों की सूची प्रस्तुत करें।

ध्यान दें:-यदि सरकारी कर्मचारी उपनियम (3) में निर्दिष्ट सूची में उल्लिखित गवाहों के बयानों की प्रतियों की आपूर्ति के लिए लिखित रूप में आवेदन करता है, तो पूछताछ करने वाला प्राधिकारी उसे जल्द से जल्द ऐसी प्रतियां प्रदान करेगा।

(iii) आदेश के दस दिनों के भीतर या ऐसे अतिरिक्त समय के भीतर, जो जाँच प्राधिकारी अनुमति दे, किसी भी ऐसे दस्तावेज़ की खोज या प्रस्तुतीकरण के लिए सूचना दें जो सरकार के कब्जे में हैं किन्तु इस नियम के उप-नियम (3) में निर्दिष्ट सूची में उल्लिखित नहीं हैं:

बशर्ते कि सरकारी कर्मचारी सरकार द्वारा खोजे जाने या प्रस्तुत किए जाने के लिए आवश्यक दस्तावेजों की प्रासंगिकता दर्शाएगा।

(12) जाँच प्राधिकारी, दस्तावेजों की खोज या प्रस्तुति के लिए सूचना प्राप्त होने पर, उन्हें या उनकी प्रतियों को उस प्राधिकारी को अग्रेषित करेगा जिसकी अभिरक्षा या कब्जे में वे दस्तावेज रखे गए हैं, और साथ ही उन्हें ऐसी तिथि तक प्रस्तुत करने का अनुरोध करेगा जो ऐसी अध्ययन में निर्दिष्ट की जा सकती है:

बशर्ते कि पूछताछ करने वाला प्राधिकारी, उसके द्वारा लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, ऐसे दस्तावेजों की मांग करने से इनकार कर सकता है जो उसकी राय में मामले के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

(13) इस नियम के उप-नियम (12) में निर्दिष्ट माँग की प्राप्ति पर, अपेक्षित दस्तावेजों की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाला प्रत्येक प्राधिकारी उन्हें पूछताछ करने वाले प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करेगाः

बशर्ते कि यदि अधिग्रहीत दस्तावेजों की अभिरक्षा या कब्जा रखने वाला प्राधिकारी, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसे सभी या किसी भी दस्तावेज को प्रस्तुत करना लोकहित या राज्य की सुरक्षा के विरुद्ध होगा, तो वह तदनुसार जाँच प्राधिकारी को सूचित करेगा और जाँच प्राधिकारी, ऐसी सूचना मिलने पर, सरकारी कर्मचारी को सूचना देगा और ऐसे दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या खोज के लिए अपने द्वारा की गई माँग को वापस ले लेगा।

(14) जाँच के लिए निर्धारित तिथि पर, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य जिसके द्वारा आरोप पत्रों को साबित करने का प्रस्ताव है, अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा या उसकी ओर से प्रस्तुत किया जाएगा। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी द्वारा या उनकी ओर से गवाहों से पूछताछ की जाएगी और सरकारी कर्मचारी द्वारा या उनकी ओर से

उनसे प्रति-परीक्षण की जा सकती है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को उन किसी भी बिंदु पर गवाहों से फिर से पूछताछ करने का अधिकार होगा, जिन पर उनसे प्रति-परीक्षण की गई है, लेकिन किसी नए मामले पर नहीं, पूछताछ करने वाले प्राधिकारी की अनुमति के बिना।पूछताछ करने वाला प्राधिकारी भी गवाहों से ऐसे सवाल कर सकता है, जो वह उचित समझे।

15) यदि अनुशासनिक प्राधिकारी की ओर से मामले के समापन से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है, तो जांच प्राधिकारी, अपने विवेकानुसार, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दे सकता है जो सरकारी कर्मचारी को दी गई सूची में शामिल नहीं हैं या स्वयं नए साक्ष्य मांग सकता है या किसी गवाह को वापस बुलाकर उसकी पुनः जांच कर सकता है और ऐसे मामले में सरकारी कर्मचारी, यदि वह मांग करता है, तो प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्तावित अतिरिक्त साक्ष्यों की सूची की एक प्रति और ऐसे नए साक्ष्य प्रस्तुत करने से पहले तीन स्पष्ट दिनों के लिए जांच को स्थगित करने का हकदार होगा, जिसमें स्थगन का दिन और जिस दिन तक जांच स्थगित की जाती है, वह दिन शामिल नहीं है । पूछताछ करने वाला प्राधिकारी सरकारी कर्मचारी को ऐसे दस्तावेजों को अभिलेख में लेने से पहले उनका निरीक्षण करने का अवसर देगा।जाँचकर्ता प्राधिकारी सरकारी कर्मचारी को नया साक्ष्य प्रस्तुत करने की भी अनुमति दे सकता है, यदि उसकी राय है कि न्याय के हित में इस तरह के साक्ष्य का उत्पादन आवश्यक हैः

बशर्ते कि नए साक्ष्य की अनुमति नहीं दी जाएगी या किसी गवाह को साक्ष्य के पूरक के रूप में वापस नहीं बुलाया जाएगा। यदि मूल रूप से प्रस्तुत साक्ष्य में कोई अंतर्निहित कमी या दोष है तो इस तरह के साक्ष्य की मांग की जा सकती है।

(16) जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए मामला बंद हो जाता है, तो सरकारी कर्मचारी को अपना बचाव मौखिक या लिखित रूप में,

जैसा भी वह चाहे, बताना होगा। यदि बचाव मौखिक रूप से किया जाता है, तो उसे दर्ज किया जाएगा और सरकारी कर्मचारी को उस अभिलेख पर हस्ताक्षर करने होंगे। दोनों ही मामलों में बचाव कथन की एक प्रति नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी, यदि कोई हो, को दी जाएगी।

(17) इसके बाद सरकारी कर्मचारी की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएँगे। सरकारी कर्मचारी, यदि चाहे तो, अपनी ओर से स्वयं की जाँच कर सकता है। इसके बाद सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्षियों की जाँच की जाएगी और वे अनुशासनिक प्राधिकारी के साक्षियों पर लागू प्रावधानों के अनुसार जाँच प्राधिकारी द्वारा जाँच, प्रति परीक्षण और पुनः जाँच के लिए उत्तरदायी होंगे।

18) जाँच प्राधिकारी, सरकारी कर्मचारी द्वारा अपना मामला बंद करने के बाद,और यदि सरकारी कर्मचारी ने स्वयं जाँच नहीं की है,तो सामान्यतः उससे साक्ष्य में उसके विरुद्ध दिखाई देने वाली परिस्थितियों के बारे में पूछताछ कर सकता है ताकि सरकारी कर्मचारी अपने विरुद्ध साक्ष्य में दिखाई देने वाली किसी भी परिस्थिति को स्पष्ट कर सके।

19) जाँच प्राधिकारी, साक्ष्य प्रस्तुतीकरण पूरा होने के पश्चात,नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी, यदि कोई हो, और सरकारी कर्मचारी की सुनवाई कर सकता है, या यदि वे चाहें तो उन्हें अपने मामले का लिखित संक्षिप्त विवरण दाखिल करने की अनुमति दे सकता है ।

(20) यदि सरकारी कर्मचारी, जिसे आरोप-पत्र की प्रति सौंपी गई है, इस प्रयोजन के लिए निर्दिष्ट तिथि को या उससे पहले अपना लिखित बचाव कथन प्रस्तुत नहीं करता है या जांच प्राधिकारी के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं होता है या अन्यथा इस नियम के प्रावधानों का पालन करने में विफल रहता है या इनकार करता है, तो जांच प्राधिकारी एकपक्षीय जांच कर सकता है।

21) (क) जहाँ कोई अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जो नियम 14 के खंड (i) से (v) में निर्दिष्ट कोई भी दंड लगाने में सक्षम है [किन्तु नियम 14 के खंड [(vi) से(xi)] में निर्दिष्ट कोई भी दंड लगाने में सक्षम नहीं

है], ने स्वयं किसी आरोपपत्र की जाँच की है या उससे जाँच करवाई है और वह प्राधिकारी अपने निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए या अपने द्वारा नियुक्त किसी जाँच प्राधिकारी के निष्कर्षों पर अपने निर्णय को ध्यान में रखते हुए, इस राय का है कि नियम 14 के खंड [(vi) से (xi)] में निर्दिष्ट दंड सरकारी कर्मचारी पर लगाए जाने चाहिए, तो वह प्राधिकारी जाँच के अभिलेखों को ऐसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अग्रेषित करेगा जो नियम 14 के खंड [(vi) से (xi)] में उल्लिखित दंड लगाने में सक्षम है।

(ख) जिस अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अभिलेख इस प्रकार भेजे जाते हैं, वह अभिलेखों में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कार्रवाई कर सकता है या यदि उसकी राय में न्याय के हित में किसी भी गवाह की आगे की परीक्षा आवश्यक है, तो वह गवाहों को वापस बुला सकता है और गवाहों की परीक्षा, प्रति परीक्षा और पुनः परीक्षा कर सकता है और सरकारी कर्मचारी पर इन नियमों के अनुसार उचित समझे जाने वाले दंड लगा सकता है।

(22) जब भी कोई पूछताछ करने वाला प्राधिकारी, किसी जांच में साक्ष्य के पूरे या किसी हिस्से को सुनने और दर्ज करने के बाद, उसमें अधिकारिता का प्रयोग करना बंद कर देता है, और उसके बाद कोई अन्य जांच करने वाला प्राधिकारी आता है, जिसके पास और जिसके पास ऐसी अधिकारिता होती है, तो इस तरह का उत्तराधिकारी प्राधिकारी अपने पूर्ववर्ती द्वारा इस तरह से दर्ज किए गए साक्ष्य के आधार पर, या अपने पूर्ववर्ती द्वारा आंशिक रूप से दर्ज किए गए और आंशिक रूप से स्वयं द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य के आधार पर कार्य कर सकता हैः

बशर्ते कि यदि उत्तरवर्ती जाँच प्राधिकारी की राय में, किसी ऐसे गवाह की आगे की जाँच आवश्यक है, जिसका साक्ष्य पहले ही दर्ज किया जा चुका है, न्याय के हित में, तो वह ऐसे किसी भी गवाह को वापस बुला सकता है, उसकी जाँच कर सकता है, उससे प्रति परीक्षा और पुनः परीक्षा कर सकता है, जैसा कि इसमें पहले प्रावधान किया गया है।

(23)((i) जाँच के समापन के बाद, एक अभिलेख तैयार किया जाएगा और इसमें निम्नलिखित शामिल होंगेः-

(क) आरोप पत्रों और दुराचार या दुर्व्यवहार के आरोपों का बयान;

(ख) प्रभार के प्रत्येक आरोप पत्र के संबंध में सरकारी सेवक का बचाव।

(ग) प्रत्येक आरोप पत्र के संबंध में साक्ष्य का मूल्यांकन,

(घ) प्रत्येक आरोप पत्र पर निष्कर्ष और उसके कारण।

स्पष्टीकरण।- यदि जांच प्राधिकारी की राय में जांच की कार्यवाही मूल आरोप से अलग कोई आरोप पत्र स्थापित कर सकती है, तो वह ऐसे आरोप पत्र पर अपने निष्कर्ष दर्ज कर सकता हैः

बशर्ते कि ऐसे आरोप पत्रों पर निष्कर्ष तब तक दर्ज नहीं किए जाएंगे जब तक कि सरकारी कर्मचारी ने या तो उन तथ्यों को स्वीकार नहीं किया है जिन पर ऐसा आरोप पत्र आधारित है या उसे ऐसे आरोप पत्रों के खिलाफ अपना बचाव करने का उचित अवसर नहीं मिला है।

(ii) जाँच प्राधिकारी, जहाँ वह स्वयं अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी को जाँच के अभिलेख भेजेगा जिसमें शामिल होंगे -

(क) इस उप नियम के खंड (i) के तहत उसके द्वारा तैयार की गई प्रतिवेदन;

(ख) सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत बचाव का लिखित बयान, यदि कोई हो;

(ग) जाँच के दौरान प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य;

(घ) जांच के दौरान प्रस्तुतकर्ता अधिकारी या सरकारी कर्मचारी या दोनों द्वारा दायर लिखित विवरण, यदि कोई हो; और

(ङ) जाँच के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी और जाँच प्राधिकारी द्वारा दिए गए आदेश, यदि कोई हों।

` 5. उप-नियम 3 के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी आरोपों के निश्चित और विशिष्ट अनुच्छेदों को हटा देगा या अभियोग-पत्र तैयार करवाएगा, आरोप-पत्र के समर्थन में अभियोग-पत्र, प्रासंगिक तथ्यों का कथन जिसमें सरकारी कर्मचारी द्वारा की गई कोई भी स्वीकारोक्ति या स्वीकारोक्ति शामिल है, ऐसे दस्तावेजों की सूची जिसके द्वारा ऐसे गवाहों की सूची बनाई जाएगी जिनके द्वारा आरोपों के अनुच्छेदों को कायम रखा जाना प्रस्तावित है।

6. वर्तमान मामले में, निर्विवाद रूप से 06.12.2013 पर जारी किए गए आरोपों के लेखों के साथ गवाहों की सूची उपलब्ध नहीं कराई गई है।दस्तावेजों की सूची के अनुसार तीन दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए और इसके लेखकों को गवाह के रूप में उद्धृत नहीं किया गया है, न ही जांच की गई है या प्रतिपरीक्षा की गई है और अपीलार्थी को उनसे प्रतिपरीक्षा करने का अवसर प्रदान नहीं किया गया है।

7. विद्वान एकल न्यायाधीश ने नियमावली,2005 के नियम 17 के उप-नियम 3 की अनदेखी करने में त्रुटि की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा बहुत सीमित है।सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह निर्णय दिया है कि उच्च न्यायालयों को अनुशासनात्मक कार्यवाही और सजा देने में तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन न हो।इस संबंध में, सर्वोच्च न्यायालय ने **(2021) 11 एससीसी 321** में प्रतिवेदित **भारत संघ एवं अन्य बनाम दलबीर सिंह** के मामले में, *पैराग्राफ संख्या 21 में निम्नलिखित निर्णय दिया है:*

> ***"21. इस न्यायालय ने भारत संघ बनाम पी. गुनासेकरन [भारत संघ बनाम पी. गुनासेकरन, (2015) 2 एससीसी 610:(2015) 1 एससीसी(एल. एंड. एस.) 554] में न्यायिक समीक्षा के अधिकार क्षेत्र के***

प्रयोग के लिए व्यापक मानदंड निर्धारित किए थे। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः(एससीसी पीपी. 616-17, पैरा 12-13)

"12. अच्छी तरह से स्थिर स्थिति के बावजूद, यह दुखद रूप से परेशान करने वाला है कि उच्च न्यायालय ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक अपीलीय प्राधिकरण के रूप में काम किया है, यहां तक कि जांच अधिकारी के समक्ष साक्ष्य की भी सराहना की है। आरोप 1 पर निष्कर्ष को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा भी इसका समर्थन किया गया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में, उच्च न्यायालय पहली अपील के दूसरे न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है और नहीं कर सकता है। उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास नहीं करेगा।उच्च न्यायालय केवल यह देख सकता है कि क्याः

(क) जाँच एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा की जाती है;

(ख) <u>जांच उस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार की जाती है;</u>

(ग) <u>कार्यवाही के संचालन में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होता है;</u>

(घ) अधिकारियों ने मामले के साक्ष्य और गुण-दोष से परे कुछ विचारों के कारण स्वयं को निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुँचने से वंचित कर लिया है;

(ङ) अधिकारियों ने खुद को अप्रासंगिक या बाहरी विचारों से प्रभावित होने दिया है;

(च) यह निष्कर्ष, पहली नज़र में, इतना मनमाना और मनमौजी है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता;

vii) दंड की आनुपातिकता पर विचार करें जब तक कि यह उसकी अंतरात्मा को झकझोर न दे।"

(छ) अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वीकार्य और भौतिक साक्ष्य को स्वीकार करने में गलती से विफल रहा था;

(ज) अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलती से अस्वीकार्य साक्ष्य को स्वीकार किया था जिसने निष्कर्ष को प्रभावित किया था;

(झ) तथ्य का निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

(रेखांकित आपूर्ति की गई)

13. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत, उच्च न्यायालय निम्नलिखित नहीं करेगाः

(i) साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना।

(ii) जाँच के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना, यदि वे कानून के अनुसार किए गए हैं;

(iii) साक्ष्य की पर्याप्तता में जाना;

(iv) साक्ष्य की विश्वसनीयता पर गौर करें;

(v) हस्तक्षेप करें, यदि कुछ कानूनी साक्ष्य हैं जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं;

(vi) तथ्य की त्रुटि को ठीक करें, चाहे वह कितनी भी गंभीर क्यों न लगे;

(vii) दंड की आनुपातिकता पर विचार करें जब तक कि वह उसकी अंतरात्मा को झकझोर न दे।"

8. वर्तमान मामले में दस्तावेजों के लेखकों या गवाहों का उल्लेख न करना और उन लेखकों की जाँच और गैर- जाँच अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए कथित आरोपों को साबित करने के लिए प्रासंगिक है, इसलिए अपीलकर्ता को प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत प्रदान करने से मना कर दिया गया है।

9. सर्वोच्च न्यायालय ने ***एस.सी. गिरोत्रा बनाम यूनाइटेड कमर्शियल बैंक (यूको बैंक)*** मामले में, जिसका ***1995 के अनुपूरक (3) एससीसी 212*** में प्रतिवेदन हुआ था, में यह माना है कि विभागीय जांच में यदि किसी दस्तावेज़ पर भरोसा करना आवश्यक हो, तो उस स्थिति में उस दस्तावेज़ के लेखक की जाँच और प्रति परीक्षण आवश्यक है।

10. ***2001(1) एससीसी182,*** में प्रतिवेदन किए गए ***कुमाऊं मंडल विकास निगम लिमिटेड बनाम गिरिजा शंकर पंत और अन्य*** के मामले में पैराग्राफ संख्या 21 और 22 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारन किया गया हैः

> *"21. संयोगवश, माननीय मुख्य न्यायाधीश हिदायतुल्लाह ने चन्नबसप्पा बसप्पा हप्पाली बनाम मैसूर राज्य में विभागीय जाँच में कुछ आवश्यकताओं के अनुपालन की आवश्यकता दर्ज की थी -जाँच में तथ्यों को साबित किया जाना चाहिए और जिस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही की जा रही है, उसे गवाहों से प्रति-परीक्षण करने और उन साक्ष्यों के बारे में अपना कथन या स्पष्टीकरण देने का अवसर मिलना चाहिए जिनके आधार पर उस पर आरोप लगाया गया है और अपना बचाव प्रस्तुत करने का अवसर मिलना चाहिए - इस कानून के अनुसार, प्रासंगिक तथ्यों में एक सरल प्रश्न उठता है। क्या इसका अनुपालन किया गया है? हालाँकि, तथ्यात्मक आधार पर इसका उत्तर एक स्पष्ट "नहीं" है।*
>
> *22. पैंसठ पृष्ठ की प्रतिवेदन निगम के प्रबंध निदेशक को याचिकाकर्ता के खिलाफ भेजी गई है जिसमें लिखा है कि उसके खिलाफ आरोप साबित हुए हैं-इसका आधार क्या है?क्या जांच अधिकारी का केवल आरोप पत्र के आधार पर इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचना उचित था?उत्तर संभवतः सकारात्मक नहीं हो सकता है; यदि अभिलेखों पर विचार किया गया है, तो तत्काल आवश्यकता इस बात पर विचार करने की होगी कि वह व्यक्ति कौन है जिसने इसे प्रस्तुत किया है और अगला मुद्दा अभिलेखों की प्रकृति के संबंध में हो सकता है-दुर्भाग्य से इस लंबी प्रतिवेदन में इस संबंध में कोई*

चर्चा नहीं है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी कहाँ है? सुनवाई की तारीख तय करने वाला नोटिस कहाँ है? गवाहों की सूची कहाँ है? बचाव पक्ष के गवाहों को क्या हुआ है? ये सभी सवाल उठते हैं लेकिन दुर्भाग्य से लंबी प्रतिवेदन में कोई जवाब नहीं मिलता है। लेकिन अगर किसी के पास यह नहीं है-तो क्या इसे न्याय की अवधारणा के अनुरूप कहा जा सकता है या यह न्याय की पूरी तरह से विफलता के समान है। उच्च न्यायालय इसका जवाब न्याय की विफलता के रूप में देता है और हम इसके साथ अपनी सहमति देते हैं। पूरे मामले को इस तरह से निपटाया गया है कि इसे किसी भी उचित कारण से पूरी तरह से रहित कहा जा सकता है और इस संदर्भ में किंग्स बेंच डिवीजन के डेनबी (विलियम) एंड संस लिमिटेड बनाम स्वास्थ्य मंत्री मामले में दिए गए निर्णय पर विचार किया जा सकता है। मंत्री के प्रशासनिक कर्तव्यों पर विचार करते हुए, जे स्विफ्ट ने निम्नलिखित कहा है:

> *"मुझे नहीं लगता कि यह कहना सही है कि स्वास्थ्य मंत्री या राज्य का कोई अन्य अधिकारी, जिसे संसद के अधिनियम को लागू करना है, न्यायिक अधिकारी है।।वह एक प्रशासनिक अधिकारी है, जो एक प्रशासनिक कार्यालय के कर्तव्यों का पालन करता है, और संसद के विशेष अधिनियमों के प्रावधानों का प्रशासन करता है। समय-समय पर, प्रशासनिक कर्तव्यों के दौरान, उसे ऐसे कार्य करने होते हैं जिनमें उसे व्यक्तियों के अधिकारों और संपत्ति में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होती है, और ऐसा करते हुए अदालतों ने कहा है कि उसे निष्पक्ष और यथोचित रूप से कार्य करना चाहिए; मनमौजी रूप से नहीं, बल्कि न्याय के सामान्य आदेशों के अनुसार।उन कर्तव्यों के निष्पादन में मंत्री के विवेक का प्रयोग शामिल है, और मुझे लगता है कि लॉर्ड हैल्सबरी द्वारा शार्प बनाम वेकफील्ड में जो कहा गया था, उस पर इस तरह के विवेक के प्रयोग के संदर्भ में विचार करना महत्वपूर्ण है। वहाँ उन्होंने कहाः*
>
> > *"विवेकाधिकार" का अर्थ है जब यह कहा जाता है कि कोई कार्य प्राधिकारियों के विवेक के अंतर्गत किया जाना चाहिए, अर्थात वह कार्य तर्क और न्याय के नियमों के अनुसार*

किया जाना चाहिए, न कि निजी राय के अनुसार: रूक मामाला; कानून के अनुसार, न कि मनमौजी। यह मनमाना, अस्पष्ट और काल्पनिक नहीं, बल्कि कानूनी और नियमित होना चाहिए। और इसका प्रयोग उस सीमा के भीतर किया जाना चाहिए, जिसके भीतर एक ईमानदार व्यक्ति, जो अपने पद का निर्वहन करने में सक्षम है, स्वयं को सीमित रखे।"

11. विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के साथ नवीनतम कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता ने एक मामला बनाया है, जिससे विद्वान एकल न्यायाधीश के 2017 के दीवानी रिट क्षेत्राधिकार मामला सं.8328 में दिनांक 15.01.2019 के पारित आदेश में हस्तक्षेप किया जा सके। तदनुसार, दिनांक 08.08.2023 के बर्खास्तगी आदेश और दिनांक 15.01.2019 को विद्वान एकल न्यायाधीश के 2017 के 8328 में पारित आदेश रद्द किए जाते हैं।

12. हम बर्खास्तगी आदेश के साथ-साथ तकनीकी आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश में भी हस्तक्षेप कर रहे हैं, इसलिए, हमें ***प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य, (1993) 4 एससीसी 727*** में प्रतिवेदित किए गए मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखना होगा, साथ ही **अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम अनंत साहा एवं अन्य, (2011) 5 एससीसी 142** में प्रतिवेदित किए गए मामले के पैराग्राफ संख्या 48 से 50 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

"48. ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर में, इस न्यायालय ने कहा कि जहां अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा दी गई सजा को अदालत/न्यायाधिकरण द्वारा किसी तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया जाता है, वहां प्राधिकरण को उस स्तर से नए सिरे से जांच करने का अवसर दिया जाना चाहिए जहां वह कथित भेद्यता सामने आने से पहले था। हालांकि, नए सिरे से जांच करने के उद्देश्य से, दोषी को बहाल किया जाना है और उसे

निलंबित किया जा सकता है। बकाया मजदूरी आदि का सवाल अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा नई जांच समाप्त होने के बाद कानून के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

49. बकाया वेतन के अधिकार के मुद्दे पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है और लगातार यह माना गया है कि कर्मचारी पर लगाई गई सज़ा को न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा रद्द कर दिए जाने के बाद भी, बकाया वेतन का भुगतान अभी भी विवेकाधीन है। बकाया वेतन देने का अधिकार न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि ऐसे मामलों के लिए कोई निश्चित सूत्र विकसित नहीं किया जा सकता है और न ही कोई सार्वभौमिक नियम लागू किया जा सकता है। यहां तक कि अगर दोषी को बहाल किया जाता है, तो यह स्वचालित रूप से उसे बकाया मजदूरी वापस करने का हकदार नहीं बनाएगा क्योंकि मजदूरी वापस पाने की पात्रता बहाली से स्वतंत्र है। तथ्यात्मक परिदृश्य और न्याय, समता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । किसी उपयुक्त प्राधिकारी/न्यायालय या न्यायाधिकरण को तथ्यात्मक परिदृश्य और न्याय, समता और सद्विवेक के सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा। ऐसे मामलों में, न्यायालय या न्यायाधिकरण का दृष्टिकोण कठोर या यांत्रिक नहीं, बल्कि लचीला और यथार्थवादी होना चाहिए। (देखें यू.पी. एसआरटीसी बनाम मिट्ठू सिंह, अकोला तालुका एजुकेशन सोसाइटी बनाम शिवाजी और बालासाहेब देसाई सहकारी एस.के. लिमिटेड बनाम काशीनाथ गणपति कांबले।)

50. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दोषी द्वारा मांगी गई राहत कि अपीलकर्ताओं को पहले समाप्ति आदेश की तारीख से अब तक के बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए, पर विचार नहीं किया जा सकता है और इसके द्वारा खारिज कर दिया जाता है।यदि अपीलकर्ता एक नई जांच करने का विकल्प चुनते हैं, तो वे दोषी को बहाल करने के लिए बाध्य हैं और यदि उसे निलंबित कर दिया जाता है, तो वह जांच के समापन तक निर्वाह भत्ते का हकदार होगा। अन्य सभी अधिकारों का निर्धारण अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा जैसा कि जांच के समापन के बाद ऊपर बताया

गया है। इन टिप्पणियों के साथ, अपील का निपटारा हो जाता है। कोई लागत नहीं।"

13. सर्वोच्च न्यायालय ने ***उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रभात कुमार*** मामले में **ईसीआईएल** (अपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराया, जिसकी प्रतिवेदना ***2022 लाइव लॉ (एससी) 736*** में दी गई है। उपर्युक्त निर्णयों में समग्र सिद्धांत यह है कि तकनीकी आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही में आदेश को रद्द करने की स्थिति में, मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजने से पहले, न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह इस बात की जाँच करे कि क्या इससे राज्य के खजाने को कोई वित्तीय नुकसान हुआ है या कोई वित्तीय हानि हुई है।। वर्तमान मामले में, कथित आरोप यह है कि अपीलार्थी ने अपनी आय के ज्ञात स्रोतों के अनुपात से अधिक धन अर्जित किया, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के प्रावधानों को आकर्षित करता है। इसलिए, यह अनुशासनात्मक प्राधिकरण के लिए एक मामला या प्रतिप्रेषण है कि वह दोषपूर्ण चरण से जांच शुरू करे, अर्थात् दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची नए सिरे से तैयार करे और इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर जांच को पूरा करने के लिए आगे बढ़े।

14. अनुशासनिक प्राधिकारी को एतद्द्वारा निदेशित किया जाता है कि वह बिहार सेवा संहिता के नियम 97 के आलोक में एक युक्तिसंगत आदेश पारित करें, जिसमें बर्खास्तगी की तिथि से विभागीय जाँच के समापन तक की अवधि को नए सिरे से विनियमित किया जाए। दूसरे शब्दों में, सेवा या सेवा अवधि को कैसे विनियमित किया जाए, इस संबंध में ऐसा आदेश विभागीय जाँच के समापन की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर पारित किया जाएगा।

15. दिनांक 08.08.2016 के बर्खास्तगी आदेश को अपास्त करने के आलोक में, इस तथ्य के साथ कि अपीलकर्ता ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली है और वर्ष 2018 में सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है, वह अनंतिम पेंशन का हकदार है। अनंतिम पेंशन उसकी सेवानिवृत्ति की तिथि से मानी जाएगी और बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43(ख) के साथ पठित नियम, 2005 के अंतर्गत विभागीय जाँच पूरी होने तक उसका वितरण किया जाएगा।

16. सक्षम प्राधिकारी को बिहार पेंशन नियमावली के नियम 43 (बी) के आलोक में सेवानिवृत्त कर्मचारी के खिलाफ जांच जारी रखने के संबंध में जांच करने का निर्देश दिया जाता है।

17. तदनुसार, 2019 का वर्तमान एल.पी.ए. सं.298 आंशिक रूप से अनुमत है।

(पी. बी. भजंत्री, न्यायमूर्ति)

(रमेश चंद मालवीय, न्यायमूर्ति)

एस. कात्यायन/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।